RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल.-011/2021-23

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 48, अंक : 9 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 13 जून, 2021

विक्रमी सम्वत् 2078, सृष्टि सम्वत् 1960853122

दयानन्दाब्द : 197 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–48, अंक : 9, 10-13 जून 2021 तदनुसार 31 ज्येष्ठ, सम्वत् 2078 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

ध्यानियों को महान् प्रकाश मिलता है

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः।।
-ऋ० ७।९०।४

शब्दार्थ-उच्छन्नुषसः = प्रकाश का विस्तार करने वाले सुदिनाः = उत्तम दिनों वाले अरिप्राः = निर्दोष दीध्यानाः = निरन्तर ध्यान करने वाले मनुष्य उरु = विशाल ज्योतिः = प्रकाश को विविदुः = प्राप्त करते हैं। उशिजः = कमनीय कामनाओं वाले गव्यम् = इन्द्रिय-सम्बन्धी ऊर्वम् = विशाल बल को चित् = भी वि+वव्रुः = विशेषरूप से वरण करते हैं तेषाम् = उनके प्रदिवः + अनु = ज्ञान प्रकाश के अनुकूल आपः = जल सस्रुः = बहने लगते हैं।

व्याख्या-सब विषयों का भण्ड़ार होते हुए भी वेद मुख्यतया ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन करता है। ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में लिखा है-

सर्वेषां वेदानां मुख्यं तात्पर्यं ब्रह्मण्येवास्ति। क्वचित्साक्षात्क्वचिच्च परम्परया, न कस्मिंश्चिदपि मन्त्रे ईश्वरार्थ-त्यागो अस्ति।

अर्थात् सभी वेदों का मुख्य तात्पर्य ब्रह्म में ही है, कहीं साक्षात्, कहीं परम्परा से, किसी भी मन्त्र में ईश्वर-अर्थ का त्याग नहीं है।

भाव यह है कि कोई मन्त्र यदि ऐसा प्रतीत हो जिसमें परम्परा से अतिरिक्त का वर्णन हो, वहाँ भी परमात्मा का अधिष्ठाता-रूप से या स्रष्टा आदि के रूप में वर्णन समझना चाहिए। वैसे वेद ब्रह्मविद्या का ही मुख्य-रूप से वर्णन करता है। जीव, प्रकृति, ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान कराके प्रकृतिपाश से छुड़ाकर ब्रह्मसाक्षात् कराना ब्रह्मविद्या का काम है। ज्ञान का प्रधान साधन ध्यान है, उस ध्यान का बयान इस मन्त्र में है-

उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः = निरन्तर ध्यान करने वाले विशाल प्रकाश को प्राप्त करते हैं। ध्यान का एक सामान्य अर्थ है विचार करना। प्रत्येक पदार्थ के गुण-दोषों का विवेचन विचार है। अमुक पदार्थ उपादेय=ग्रहण करने योग्य और अमुक हेय=त्यागने योग्य है, इस प्रकार के विवेक को विचार कहते हैं। इस प्रकार से हेय-उपादेय का विवेक करके हेय को त्यागकर वस्तु पर चिरकाल तक अटूट विचारधारा निर्बाधरूप से बनी रहे, उसको ध्यान कहते हैं। इस ध्यान का फल विशाल प्रकाश बतलाया है। अनुभवी जन इसका समर्थन करते हैं। ध्यानियों की थोड़ी-सी पहचान बताई है-वे सुदिन होते हैं। उनकी दिनचर्या बड़ी सधी हुई, नियमित होती है। वे अरिप्र होते हैं। साधारणतया दस प्रकार के पाप होते हैं। जैसा कि वात्स्यायन मुनिजी ने न्यायभाष्य में लिखा है-

शरीरेण प्रवर्त्तमानः हिंसास्तेयप्रतिषिद्धमैथुनान्याचरित, वाचाऽनृतपरुषसूचनासंबद्धानि, मनसा परद्रोहं परद्रव्याभीप्सां नास्तिक्यं चेति, सेयं प्रवृत्तिरधर्माय। -न्यायभाष्य १।१।२

शरीर से प्रवृत्त होता हुआ मनुष्य हिंसा, चोरी और निषिद्ध मैथुन करता है। वाणी से मिथ्या, कठोर वचन, चुग़ली और असम्बद्ध प्रलाप करता है, मन से दूसरों से द्रोह, दूसरों के धन-हरण करने की इच्छा और नास्तिकता। यह प्रवृत्ति अधर्म का, पाप का हेतु होती है।

ध्यानीजन इन पापों से रहित होते हैं। इस बात को अगले मन्त्र के पूर्वार्द्ध में बहुत स्पष्ट करके कहा है-

ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति।
-ऋ० ७।९०।५

वे सच्चे मन से ध्यान करते हुए, अपने सच्चे ज्ञानकर्म से युक्त हुए निर्वाह करते हैं, अर्थात् उनके ज्ञान, कर्म तथा मन में कोई खोट नहीं होता।

ध्यान का साधन भी बतला दिया कि वह मन से किया जाता है। उनके शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक व्यवहार में किसी प्रकार का असत्य नहीं होता, उनके निष्पाप होने में सन्देह किसे हो सकते है?

'स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति' में एक और सङ्केत भी है कि उनका कर्म, अर्थात् आहार-व्यवहार, युक्तियुक्त होता है। ध्यानी कर्महीन नहीं होते, वरन् वे 'स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति' = अपने कर्म से युक्त हुए निर्वाह करते हैं। उन्हें ज्ञात है कि 'नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्' कोई भी एक क्षण कर्म किये बिना नहीं रह सकता, अतः वे अपने कर्त्तव्य कर्म से सदा युक्त रहते हैं। ध्यानियों के अरिप्र होने का हेतु भी इस मन्त्र में बता दिया गया है, अतः 'उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्याना': = ध्यान करते हुए वे विशाल प्रकाश को प्राप्त करते हैं। रिप्र=दोष=पाप अन्धकार में होता है। प्रकाश में अन्धे या असावधान को ठोकर लग सकती है। नेत्र वाले तथा सावधान को ठोकर लगना सम्भव नहीं। ध्यानियों का ध्यानानुष्ठान उनकी सावधानता की सूचना देता है, अतः प्रकाश प्राप्त कर वे पाप से निरवकाश हो जाते हैं। परिच्छिन्न जीव का स्वभाव है गति करना, इस नैसर्गिक नियम को जानकर वे ध्यानी भी गति करने में विवश हैं, अतः वे ध्यान से प्राप्त ज्योति के प्रसार के लिए यत्न करते हैं। ज्ञान-ज्योति प्रसार करने से उनका ज्ञानालोक उत्तरोत्तर बढ़ता है और इस प्रकार उनके रिप्रों का संहार होता है। योग के द्वारा वे अपनी इन्द्रियशक्ति बढ़ा लेते हैं। उनके तप के प्रभाव से अध्यात्म जल की शान्त धाराएँ बहने लगती हैं और वे उनके रहे-सहे दोषों को भी बहा ले जाती हैं। ऋग्वेद (१०।९।८) में इस अध्यात्मजल की महिमा ऐसी ही कही है-

इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम्।।

हे जलो! यह बहा ले-जाओ, जो कुछ मुझमें दुरित=दुरवस्था=दुर्गति=बुराई है, अथवा जो मैंने किसी से द्रोह किया है, या गाली दी है, अथवा झूठ बोला है।

नदी-नाले वाले जल में यह बल कहाँ? वह तो 'अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति' शरीर की शुद्धि कर सकता है। आओ, इस जल में जी भरकर नहाओ।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

... अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना

ले.-डॉ. जगदीश शास्त्री चण्डीगढ़।

विज्ञ पाठक सही समझ रहे हैं। यह शीर्षक आर्य समाज के छठे नियम का उत्तरांश है। पूरा नियम है-''संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।'' आर्य समाज संगठन का उद्देश्य क्या है? तथा उद्देश्य की प्राप्ति व उपलब्धि क्या है? इस नियम में दोनों ही स्पष्ट हैं। संसार का उपकार करना उद्देश्य है तथा स्वस्थ बलवान् शरीर, उन्नत आत्मा और उन्नत समाज का निर्माण इसकी उपलब्धि है। समाज की उपलब्धियां जितनी अधिक होंगी, इसका उद्देश्य उतना ही अधिक पूरा होगा। पृथ्वी पर इस समाज का होना उतना ही सार्थक, आवश्यक होगा। अन्यथा असफल, निष्क्रिय आर्य समाजें व बहुमूल्य दुर्लभ भूमि पर जगह-जगह खड़ी संस्था के भवन व्यर्थ सिद्ध होंगे। अर्थात् ये संस्थाएं धरती का बोझ बन कर रह जाएंगी। इसलिए समय-समय पर इन संगठनों और संस्थाओं की स्थापना के उद्देश्य के सन्दर्भ, इनकी उपयोगिता और सफलता का परीक्षण करना आवश्यक है। जहां तक आर्य समाज के उद्देश्य की बात है निश्चय ही उद्देश्य श्रेष्ठ है, ईश्वरीय है, सदैव आवश्यक है। पर उद्देश्य की पूर्ति के लिए उठाए गए कदम तथा किए गए प्रयास परीक्षणीय हैं। इस समाज द्वारा किए गए आन्दोलन, जनजागरण अभियान, प्रयास और प्रचार से विश्व मानव समाज की कितनी शारीरिक और आत्मिक उन्नति हुई है यह परीक्षणीय है। क्योंकि यदि हम मानवसमाज के शरीर और आत्मा को उन्नत कर देते हैं, तो इसके परिणाम स्वरूप स्वत: ही उन्नत समाज प्राप्त होगा।

शारीरिक उन्नति-शारीरिक उन्नति का अभिप्राय है-स्वस्थ, बलवान् शरीर की प्राप्ति। इसके लिए विभिन्न उपाय करना। पर संसार के या भारत के मनुष्यों की शारीरिक उन्नति के लिए आर्यसमाज के पास कोई योजना नहीं है। यदि है तो उनका क्रियान्वयन नहीं है। आर्यवीर दल, वीरांगना दल, कुमार सभाएं, व्यायाम शालाएं नहीं हैं। शारीरिक, नैतिक शिक्षण गतिविधियां नहीं हैं, अथवा बंद हैं। वर्तमान कहीं-कहीं औषधालयों का संचालन किया जाता है। पर क्या औषधालय चलाकर, वैद्यों की व्यवस्था करके शारीरिक उन्नति पूरी कर सकेंगे? नहीं कर सकते। औषध व वैद्य की व्यवस्था करना अति गौण कार्य है। मुख्य कार्य है-औषध और वैद्य के बिना आजीवन स्वस्थ रहने की कला सिखाना। आयुर्वेदिक, प्राकृतिक जीवनशैली का प्रशिक्षण देना। स्वास्थ्य रक्षा और वृद्धि की शिक्षा देना। आचार, आहार, दिनचर्या और ऋतुचर्या की शिक्षा देना। शारीरिक-मानसिक श्रमसंतुलन के प्रति जागरूक करना। इसके लिए सभी समाजों के द्वारा संस्था के अन्दर और बाहर नित्य नियमित आसन, प्राणायाम की कक्षाएं लगाना होगा। आहार, दिनचर्या, ब्रह्मचर्य की शिक्षा देना होगा। पुन: सभी समाजों में आर्यवीर दल तथा वीरांगना दल का पुनर्गठन करना होगा। कन्या और बाल शारीरिक शिक्षण की कक्षा लगाना होगा। सायंकाल ट्यूशन पढ़ने की जगह शारीरिक श्रम, खेल, आसन, प्राणायाम, नैतिक शिक्षा के समय के रूप में अभिभावकों में जागृति लाना होगा। इसके लिए हमारे कुल धन का २५-३० प्रतिशत भाग शारीरिक उन्नति हेतु लगाना होगा। शारीरिक शिक्षण, स्वास्थ्य, आहार से संबंधित साहित्य का लेखन, प्रकाशन, वितरण व विक्रय में धन लगाना होगा। औषध और वैद्य के बिना स्वस्थ रहने की कला व विज्ञान सिखाना होगा तथा ऐसे साहित्य नि:शुल्क व सशुल्क उपलब्ध कराने होंगे। औषध और वैद्य की सेवा अति निर्धन, अनाथ लोगों के लिए की जा सकती है सबके लिए सदैव नहीं; क्योंकि ऐसी सेवा देने वाली अन्य अनेक संस्थाएं है। युवापीढ़ी सदैव शरीर सौष्ठव और बल की उपासक होती है इस कारण आसन, व्यायाम, अस्त्र-शस्त्र संचालन, बलवृद्धि, स्वास्थ्य रक्षा और आत्मरक्षा के लिए शारीरिक गतिविधि को चलाना युवापीढ़ी को पुन: समाज में आकर्षित करने के उपाय भी हैं।

आत्मिक उन्नति-आत्मिक उन्नति का अभिप्राय है आस्तिकता की शिक्षा व प्रचार। आत्मा, परमात्मा के अस्तित्व तथा पृथकत्व का ज्ञान देना। सृष्टि का सृजन, संचालन, संहरण किसी भी शरीरधारी के द्वारा संभव नहीं है। सर्वशक्ति-शुद्धि-बुद्धि-मुक्ति और आनन्द केवल सृष्टिकर्ता का ही गुण है। अत: शरीरधारी की उपासना छुड़ाकर केवल ईश्वर की उपासना सिखाना। सभी आत्माओं के लिए शरीर बनाकर जन्म देने वाला परमात्मा एक है। अत: वही सबका पिता, हम सब उसके पुत्र और आपस में भाई-भाई एक ही विश्व परिवार के सदस्य हैं। ऐसा ईश्वर में पितृत्वभाव, मनुष्यों में भ्रातृभाव और विश्व कुटुम्बभाव का होना आत्मिक उन्नति है। संसार में रंग, रूप, लिंग, जाति, देश आदि का भेद शरीर के कारण है। शरीरधारी सभी आत्माओं का मूलस्वरूप, स्वभाव, सुख-दु:ख, मान-अपमान की अनुभूति समान है। एक सृष्टिकर्ता होने के कारण उसका दिया ज्ञान और धर्म भी एक ही है। भिन्न-भिन्न मनुष्यों द्वारा स्थापित अल्पज्ञान, अन्धविश्वास, दुराग्रहयुक्त, परस्पर विरूद्ध विचारों वाले विश्व के अनेक मत, संप्रदाय ईश्वरीय नहीं हो सकते। अत: सांप्रदायिक कट्टरवाद, भेदभाव रहित; शारीरिक लिंग, वर्ण, जाति, देश के पक्षपात से रहित; आत्मिक स्तर पर सबके सुख-दु:ख, मान-अपमान को समान समझने वाला सहिष्णु, परस्पर सहयोगी प्रवृत्ति वाले व्यक्ति का निर्माण आत्मिक उन्नति है। स्पष्ट है इस आत्मिक उन्नति के लिए आर्यसमाज के पास कोई कार्ययोजना नहीं है। बिना योजना के अधिसंख्य समाजों में कुछ-कुछ होता है। कहीं सत्संग, भजन तो अपवाद स्वरूप कहीं योगाभ्यास आदि। इसे सुनियोजित करना होगा। आर्यसमाजों की पहचान मंदिर के रूप में नहीं 'शरीर-आत्म शिक्षण केन्द्र' के रूप में बनानी होगी। समाजों में ध्यानशिक्षण की नियमित कक्षाओं के अभाव में समाज के सदस्य भी अन्य संगठनों में जाकर ध्यान की अनार्षविधि सीख रहे हैं। अत: ध्यान की कक्षाएं आरंभ करनी होंगी। अपने सदस्यों को ध्यान सिखाना होगा। ब्रह्मयज्ञ सनातन सन्ध्याविधि का पहले समाज और परिवार के प्रत्येक सदस्य को सम्यक् प्रशिक्षण देना होगा। मन्त्रों के उच्चारण और अर्थ का ज्ञान कराना होगा। ध्यान न करने वालों को केवल मन्त्रपाठ से तृप्ति नहीं होती, इसलिए सन्ध्या मन्त्रों के पद्यानुवाद का सस्वर पाठ का प्रचलन लाना होगा। साथ ही संसार की आत्मिक उन्नति के लिए लोगों को विभिन्न प्रकार के जाल से मुक्त कर आनन्द और मुक्तिदाता एक ईश्वर की सन्ध्या सिखाने की व्यवस्था करनी होगी। पद्यार्थ सहित सन्ध्या की २०-२२ पृष्ठों की पाकेट बुक्स करोड़ों की संख्या में छपानी, बेचनी और बांटनी होंगी। संसार में अज्ञान, अन्धविश्वास, कट्टरवाद फैलाने वाली विभिन्न मत, संप्रदायों की पुस्तकें बहुत हैं, बढ़ती ही जा रही हैं, सब जगह उपलब्ध हैं। इनकी जगह आध्यात्मिक साक्षरता, आत्मविज्ञान, अष्टांगयोग, ध्यान, प्राणायाम, सन्ध्योपासना की छोटी-बड़ी पुस्तकें लिखनी होंगी। इन्हें विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में अनुवाद एवं प्रकाशन कराके सामान्य जनता तक उपलब्ध कराना होगा। शारीरिक उन्नति के कार्य में संसार में अनेक संगठन कार्य कर रहे हैं। आत्मिक उन्नति में भी कुछ प्रशंसनीय कार्य हो रहे हैं। पर जैसी आध्यात्मिक उन्नति का यथार्थ कार्य आर्यसमाज कर सकती है वैसी अन्य संस्थाओं द्वारा संभव नहीं है। इसी कारण आध्यात्मिक उन्नति के कार्य को सर्वोपरि महत्व देते हुए इस पर कुल आय का आधा से अधिक भाग खर्च करना होगा।

सामाजिक उन्नति-सामाजिक उन्नति का अभिप्राय है विश्व मानवसमाज में ज्ञानात्मक, भावनात्मक, लक्ष्यात्मक और आध्यात्मिक एकता लाना। मनुष्य मनुष्य के बीच एकता और समता का भाव जगाकर मानवहित के कार्यों के लिए संगठित करना, सहयोग देना और लेना। इसके बाधक तत्त्व

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

वेदों में पर्यावरण सम्बन्धी दिशा–निर्देश

वेदों में पर्यावरण को संरक्षित करने का स्थान–स्थान पर निर्देश दिया गया हैं। वेदों में मानव जीवन से सम्बन्धित सभी पक्षों का गहन चिन्तन देखने को मिलता है। वर्तमान समय में पर्यावरण की समस्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अपने राष्ट्र के प्रति उपेक्षा का भाव मनुष्य के अन्दर पैदा हो गया है। अपने स्वार्थ के लिये आज का मानव प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर रहा है। जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरण की अत्यधिक क्षति हो रही है और भूकम्प, बाढ़, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि अनेक प्रकृति के भयावह रूप देखने को मिलते हैं।

प्रकृति को किस प्रकार हम सहेज कर रखें, इसके लिए वेदों में मनुष्य को सावधान रहने की प्रेरणा दी गई है। जिन–जिन ऊपायों के द्वारा हम प्रकृति को बचा सकते हैं, उन सभी ऊपायों का वेदों में वर्णन किया गया है। पर्यावरण के घटक तत्त्व हैं–वायु, जल, भूमि, वृक्ष–वनस्पतियाँ। अथर्ववेद में सर्वप्रथम जल–वायु के अतिरिक्त औषधियों या वृक्ष–वनस्पतियों को पर्यावरण का घटक तत्व बताया गया है। वेद में इन तत्त्वों को छन्दस कहा गया है–

त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे, पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।

छन्दस् का अर्थ है–आवरक या पर्यावरण । अथर्ववेद का कथन है कि–

आपो वात ओषधयः, तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि।।

जल, वायु और वृक्ष–वनस्पति ये पर्यावरण के घटक तत्व हैं और प्रत्येक लोक में जीवनी शक्ति के लिये अनिवार्य हैं। यदि ये ही नहीं होंगे तो मानव का जीवित रहना सम्भव नहीं है।

इन तत्त्वों के प्रदूषण या विनाश से पर्यावरण प्रदूषण होता है। आज विश्वभर में भूमि, जलवायु आदि सबको अत्यधिक मात्रा में प्रदूषित किया जा रहा है। यांत्रिक उपकरण इस समस्या को और बढ़ा रहे हैं। ऑक्सीजन के एकमात्र स्रोत वृक्ष–वनस्पतियों को निर्दयतापूर्वक काटा जा रहा है। यदि वृक्ष ही नहीं रहेंगे तो मनुष्य को ऑक्सीजन नहीं मिल पाएगा और वह जीवित नहीं रह सकेगा। वैदिक ऋषियों ने पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिए जलवायु और वृक्ष–वनस्पतियों का संरक्षण प्रमुख साधन बताया है।

वैदिक शान्तिपाठ में अभिव्यक्त पर्यावरण सम्बन्धी सद्भावनाएं सम्भवतः कालगणना की दृष्टि से समूचे विश्ववाङ्मय में प्राचीनतम हैं–

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्बह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः। शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।

वैदिक ऋषि दृश्य तथा अदृश्य उभयविध सृष्टियों की मंगल कामना करता है। उसकी सौवास्तिक परिधि में केवल पञ्चमहाभूतों से बनी भौतिक सृष्टि की नहीं है जिसका अण्डज, पिण्डज, स्वेदज एवं उद्भिजरूप हम निरन्तर देखते हैं तथा उनसे आजीवन प्रभावित होते रहते हैं। वस्तुतः उसकी दृष्टि ब्रह्माण्ड के उस अमूर्त–अगोचर पक्ष पर भी केन्द्रित है जो सर्वथा रहस्यमय हैं तथा जिनका चाक्षुष प्रत्यक्ष कथमपि सम्भव नहीं है। मूर्त–अमूर्त, व्यक्त–अव्यक्त अणु अथवा ज्ञात–अज्ञात ब्रह्माण्ड के उभयरूपों पर केन्द्रित आर्षदृष्टि ही इस तथ्य का द्योतक है कि भारतीय चिन्तक यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे की अवधारणा में दृढ़ विश्वास रखते थे। वे मानव जीवन को मानवेतर सृष्टि से सापेक्ष मानते थे। उनका यही जीवन दर्शन था कि मनुष्य निरपेक्ष होकर नहीं जीता, वस्तुतः वह एक सम्पृक्त जीवन जीता है।

अथर्ववेद में उपलब्ध राष्ट्रीय प्रार्थना में भी औषधियों , वनस्पतियों तथा समय–समय पर वर्षा के होने की प्रार्थना की गई है–

दोग्ध्री धेनुर्वोढ़ानड्वान् आशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो ओषधयो न पच्यन्ताम् । योगक्षेमो न कल्पताम्। यजु. २२/२२

इस मन्त्र में जहाँ ब्रह्मवर्चस्, ब्राह्मणों , शूर, इषव्य तथा अतिव्याधी राजन्यों की, रथेष्ट सैनिकों तथा योद्धा स्त्रियों की कामना की गई है, वहीं दोगध्री धेनु, भारवाही अनड्वान तथा आशुगामी घोड़ों की भी आकांक्षा व्यक्त की गई है। इतना ही नहीं मंगलाशंसी ऋषि यह भी चाहता है कि यथावसर पर्जन्य वर्षा करें तथा औषधियां संजीवन शक्ति को धारण करें ताकि प्रजा का योगक्षेम सिद्ध हो।

वेद मन्त्रों में बार–बार यह उल्लेख मिलता है कि सृष्टि संरचना प्रकृति मूलक अथवा पर्यावरण मूलक है। **सोम सूर्यात्मकं जगत्** की वैदिक अभिव्यक्ति यह सिद्ध करती है कि देवशास्त्रीय स्तर पर भले ही सृष्टि का निर्माण सोम अर्थात् चन्द्र एवं सूर्य के सहयोग से हुआ हो, परन्तु भौतिक स्तर पर सृष्टि जल एवं अग्नि के सहयोग का प्रतिफल है। वस्तुतः ऊर्जा का जन्म बिना जल एवं अग्नि की सम्पृक्ति के बिना सम्भव ही नहीं है। दोनों का संश्लेष भले ही अकिञ्चितकर हो, परन्तु विश्लेष महान् शक्ति का सर्जक है। आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोगों ने इस वैदिक मान्यता को सर्वथा सत्य सिद्ध कर दिया है।

सृष्टि की पर्यावरणमूलकता का स्पष्ट उद्घोष हम ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में प्राप्त करते हैं। यह विवरण चाहे कितना ही रूपकात्मक क्यों न हो, पर्यावरण के महत्व हो प्रकट करता ही है। पुरूष सूक्त के मन्त्र संख्या १२ में बताया गया है कि–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कुतः।
उरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्या शूद्रो अजायत।।

इस सूक्त में विराट् पुरूष के मुख, बाहु, उरु तथा चरण से चातुवर्ण्य की सृष्टि तथा मन, नेत्र, श्रोत्र तथा मुख से क्रमशः चन्द्रमा, सूर्य, वायु–प्राण, तथा अग्नि की सृष्टि बताई गई है। इसी पुरूष सूक्त के मन्त्र संख्या ६ में सम्पूर्ण सृष्टि को प्रकृति का ही रूप दिया गया है–

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धवि।।

इस मन्त्र में जिस सर्वहुत यज्ञ से सृष्टि की कल्पना की गई है, वह पुरुषमेध यज्ञ था। उस यज्ञ में बसन्त ही घृत था, ग्रीष्मऋतु इन्धन थी और शरद ऋतु ही हवन सामग्री थी ।

इस विलक्षण सृष्टि यज्ञ से विराट पुरुष परमात्मा ने वायव्य, आरण्य, तथा ग्राम्य पशुओं की सृष्टि की। अपनी नाभि से अन्तरिक्ष, शीर्ष से द्युलोक, चरणों से पृथिवी तथा श्रोत्र से दिशाओं की सर्जना भी उस विराट पुरुष ने की। उसी यज्ञ से अश्वादि दोनों जबड़ों वाले पशु गायें तथा भेड़–बकरियां उत्पन्न हुई।

पुरुष सूक्त के अध्ययन से प्रतीत होता है कि सर्वप्रथम देवसृष्टि हुई तदनन्तर उन्हीं देवों ने अपने मनस्संकल्पों द्वारा मानवी अथवा भौतिकी सृष्टि सम्पन्न की। चूँकि भौतिक जगत के निर्माण हेतु कोई बाह्य द्रव्य उपलब्ध नहीं था अतएव देवों ने सर्वरूपात्मक विराट पुरुष को ही हविष् के रूप में कल्पित कर नाना प्रकार की सृष्टियों को सम्पन्न किया।

इस सृष्टि वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि न केवल देवता, मानव एवं पशु–पक्षीगण, अपितु पर्यावरण का अंगभूत सब कुछ एक ही स्रोत विराट पुरुष से उत्पन्न हुआ है। पर्यावरण में आकाश, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रमण्ड़ल, वायु, अग्नि, वन, पर्वत, नदी, सागर सब कुछ आ जाता है। पर्यावरण को मानवी सृष्टि के ही समकक्ष देवमूलक मानने के कारण भारतीय श्रौत एवं स्मार्त आचार संहिता में, उन्हें विकृत न करने के सम्बन्ध में सुदृढ़ देशनाएँ प्रस्तुत की गई। इस सन्दर्भ में मनु, याज्ञवल्क्य, कात्यायन, नारद, वसिष्ठ, तथा गौतम प्रणीत स्मृतियों में अद्भुत वर्जनाएँ देखने को मिलती हैं। पर्यावरण शुद्धि का ऐसा उदात्त रूप शायद ही विश्व की किसी अन्य संस्कृति में उपलब्ध हो।

5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित सभी आर्य समाजों तथा शिक्षण संस्थाओं ने अपने अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए वृक्षारोपण किया है और पर्यावरण संरक्षण के प्रति अपनी भूमिका निभाई है। मैं सभी आर्य समाजों एवं शिक्षण संस्थाओं का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। हम सभी इसी प्रकार समाज के उत्थान में अपना योगदान देते रहें और प्रकृति को संवारते रहें, जिससे हमारे चारों ओर हरियाली हो, हमें शुद्ध वायु ऑक्सीजन के रूप में मिले। पर्यावरण दिवस के अवसर पर हमने जिन वृक्षों का रोपण किया है उनका भी हम पूर्ण ध्यान रखें।

प्रेम कुमार
संपादक एवं सभा महामन्त्री

वैदिक परम्पराएँ एवं मान्यताएँ

ले.-डॉ. सीमा कंवर प्रवक्त्री : एम.सी.एम., डी.ए.वी. कालेज फॉर वूमेन, चण्डीगढ़

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है। इसने अपने प्राचीन धर्म और दर्शन से विश्व की अनेक संस्कृतियों को प्रभावित किया है। वेद विश्व के प्राचीनतम साहित्य के रूप में सर्वत्र समादृत रहे हैं। वेद को पवमानी (अथर्ववेद, शौनक सहित 19-71) विश्वरूप (अथर्ववेद 4-35-6) सर्वज्ञान रूप परमेश्वर का नि:श्वास (बृहदा-रण्यक 2-4-10) भी कहा गया है। वेद शब्द विद् धातु से बना है जिसका अर्थ है-ज्ञान। कई बार वेद और विद्या शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। वेद से मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् अभिप्रेत हैं।

'वेद' शब्द 'विद्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है-जानना। विन्दन्ति, जानन्ति, विद्यन्ते, भवन्ति, विन्दन्ति विचारयन्ति सर्वे मनुष्या: सत्यविद्या यै: येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदा:। अर्थात् वेद वे हैं जिनसे सब सत्यविद्याएं जानी या प्राप्त की जा सकती हैं। हमारे ऋषि मुनियों ने युगों तक गहन चिन्तन मनन कर इस ब्रह्माण्ड में उपस्थित कण-कण के गूढ़ रहस्य का सत्यज्ञान वेदों में संगृहीत किया। उन्होंने अपना समस्त जीवन इन गूढ़ रहस्यों को खोजने में लगाकर भारतीय संस्कृति और परम्पराओं की नींव सुदृढ़ की। अनेक देशों के विद्वानों ने भी इन गूढ़ रहस्यों का अध्ययन कर अपने-अपने देशों का विकास किया। उन्होंने हमारे ऋषि मुनियों की तपस्या का सम्पूर्ण लाभ उठाया और अपनाया भी। वो चाहे चिकित्सा का क्षेत्र हो, औषधि शास्त्र का, खगोल शास्त्र का, ज्योतिष शास्त्र का हो अथवा साहित्य का।

वैदिक ऋषि समस्त विश्व को श्रेष्ठ एवं कर्मठ बना देखना चाहता है। ''इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुर: कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अपघ्नन्तो आराव्ण:'' इन्द्र का सम्मान बढ़ाने वाले, उसके साथ जाने वाले, विश्व को आर्य बनाने वाले, दान न देने वाले को मारने वाले सोम हैं। उन्होंने व्यक्तित्व निर्माण में शारीरिक और मानसिक शुद्धता को प्राथमिकता दी है। यजुर्वेद (6/14) का ऋषि कहता है:-

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि।

नाभिं ते शुन्धामि मेदं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि-चरित्रांस्ते शुन्धामि।। (यजु. 6/14)

अर्थात् मैं तुम्हारी वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, नाभि, मेढ्र पायु शुद्ध करता हूँ। तेरे चरित्र का शोधन करता हूँ। वास्तव में यही यथार्थ सत्य है कि जब तक शारीरिक शुद्धि नहीं होती, तब तक मानसिक शुद्धि नहीं हो सकती और जब तक इन दोनों का शोधन नहीं होता तब तक किसी भी प्राणी से चरित्र और नैतिक मान्यताओं की अपेक्षा नहीं की जा सकती। वैदिक युग के नैतिक मूल्य हैं-ईश्वर के प्रति निष्ठा, धर्मानुसार जीवनयापन, सत्य बोलना, उचित ढंग से उपयोग करना, मैत्री एवं समभाव रखना।

वैदिक काल में जीवन के प्रति दृष्टिकोण प्रगतिमय और ओजस्विता से पूर्ण था। वे तेज और बल की कामना करते थे। ''तेजोऽसि तेजो मयि धेहि... बलमसि बलं मयि धेहि। वे दुश्चरित्रता से बचने का प्रयास करते हुए सच्चरित्र की आशा करते थे। ''परिमाऽग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वा मा सुचरिते भज (ऋक् 10/24/6)। वे जानते थे कि प्रत्येक प्राणी में सत्यकर्म और दुष्कर्म दोनों का समावेश है। अथर्ववेद के (11/8/20) मन्त्र से इस तथ्य की पुष्टि होती है।

''स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत्।

बलं क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन्। अथर्व 11/8/20

अर्थात् जब त्वष्टा ने अनेक छिद्रों वाले इस शरीर का निर्माण किया, तब प्राण अपान एवं इन्द्रियों के साथ-साथ उसमें चोरी, दुष्कर्म, पाप, सत्य, यज्ञ, यश भी प्रवेश कर गए। मनुष्य सत्कर्म ही करे, उसके लिए कौन सा श्रेयस् मार्ग है? ऐसा विवेक, ऐसी बुद्धि उसके पास रहें, बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने हेतु अनेक प्रार्थनाएं की गई हैं। धियो यो न: प्रचोदयात् (ऋक् 3/62/10) और बुद्धि, दीक्षा, तप नष्ट न करने की याचना की गई है-मा नो मेधां मानो दीक्षां मा नो हिंसिष्ट यत्तप: (अथर्व 19/403)। ऋग्वेद में कहा गया है सद्बुद्धि यजन करते हैं। दुर्बुद्धि विनष्ट हो जाते हैं।

वैदिक आर्य मुख्यत: प्रकृति पूजक थे और उनके देव प्रकृति जगत् के ही रूप-रूपान्तर हैं। जाज्वल्यमान रश्मिवन्त सूर्य, रात्रि के समय मधु वर्षा करता हुआ सुखद शीतल चन्द्रमा यज्ञवेदी पर या पाकशाला में धधकती अग्नि, मेघों में से तीर की तरह निकल पड़ने वाली विद्युत्, दिन का स्वच्छ और चमकता हुआ रात्रि का नक्षत्र मंडित आकाश, गरजता बरसता तूफान, नदियों में प्रवाहित होने वाली वेगमती जलधारा प्रकृति की अचिन्त्य शक्ति के प्रतीक इन चेतन रूपों में आर्यों की तेजस्वी और स्पष्ट कल्पना ने देवत्व के दर्शन किए।

ऋग्वेद के मन्त्रों में अनेक देवताओं को प्राकृतिक जगत् के अधिष्ठाता मानकर उनका आह्वान एवं स्तवन किया गया है। देवताओं के प्रति की गई प्रार्थनाएं तत्कालीन नैतिक मूल्यों को परिलक्षित करती हैं। वे ऋत, सत्य, श्रद्धा, तप के शुभ तथा असत्य एवं दुष्कृत्यों के अशुभ परिणामों से अवगत थे। वे जानते थे कि शाश्वत सत्य ऋत से ही ब्रह्माण्ड का समस्त कार्य संचालित हो रहा है और इस ऋत में सत्य प्रतिष्ठित है-ऋते सत्यं प्रतिष्ठितम्। वह सत्य बलशाली है और शुभ कर्म करने वालों की सहायता करता है। सत्यस्य नाव: सुकृतमपीरन् (ऋक् 9/73/1) दूसरी ओर असत्य कथन गम्भीर परिणाम को जन्म देता है। असत्या इदं पदमजनता गंभीरं (ऋक्. 4/5/5) क्योंकि एक असत्य को छिपाने के लिए अनेक असत्यों का सहारा लेना पड़ता है। फलस्वरूप तथ्य तक पहुंचने में असत्य की गहराई बहुत अधिक हो जाती है। फिर उस गर्त से बाहर निकलना अत्यन्त कठिन हो जाता है। असत्य का गर्त परिवार, समाज के लिए घातक सिद्ध होता है।

वैदिक काल में समर्पण के भाव का होना भी मानव जीवन में अपना महत्व रखता है। प्रत्येक मानव यश की कामना करता है। यश की प्राप्ति कैसे हो, ऋग्वेद में उसका बहुत ही वैज्ञानिक उत्तर मिलता है। ''भागं देवेषु श्रवसे दधाना: (ऋक् 1/73/5) अर्थात् यदि यश की कामना करते हो तो देवताओं का भाग उन्हें समर्पित करो। इससे स्पष्ट है कि समर्पण बिना यश प्राप्ति सम्भव नहीं।'' उस काल में दाता और दान के प्रति मान्यताएं थीं। दाता अमर हो जाता है, क्योंकि याचकों के मध्य उसकी सदैव स्तुति होती रहती है। दाता का न ही कोई शत्रु होता है, न ही उसे किसी प्रकार का कष्ट होता है, वह कभी निर्धन नहीं होता। क्योंकि स्वर्ग एवं दृश्यमान विश्व उसे स्वयं ही देते रहते हैं। (ऋक् 10/117/3, 107,8) अत: व्यक्ति को शत हाथों से संचित करके सहस्त्र हाथों से वितरण करना चाहिए। ''शतहस्त समाहर सहस्त्रहस्त संकिर (अथर्व. 3/24/5)। परन्तु वास्तविक दान वही है जो कुटिलता रहित है।

सुददातु अपरिङ्कृता (ऋक् 8/78/8) और जो दानी नहीं है, उसे किसी प्रकार का सुख प्राप्त नहीं होता और न ही उसे कोई सुखी कर सकता है। ऋग्वेद (10, 117, 1-2) में कहा गया है कि जो दूसरों को न देकर स्वयं खा जाता है, वह मृत्यु को प्राप्त होता है। वस्तुत: अकेले भक्षण करने वाला केवल पाप ही भक्षण करता है।-नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी (ऋक् 10/117/6)।

वे सर्वत्र मैत्री भाव का आह्वान करते थे-मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे (यजु. 36/18) मित्रता कैसी हो, कहा गया है कि मित्रता कल्याणकारी, चित्त को शान्ति प्रदान करने वाली हो। मित्र वही है जो सदैव मित्र का हितैषी हो। वह मित्र ही नहीं जो मित्र की सहायता नहीं करता-न सखा यो न ददाति सख्ये (ऋक् 4/10/8; 3/18/1; 10/117/

(शेष पृष्ठ 7 पर)

ज्योतिष की वेदांगता

ले.-वीरेन्द्र कुमार अलंकार अध्यक्ष, संस्कृत विभाग पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

(गतांक से आगे)

इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि लोकों के साथ सूर्य का आकर्षण होता है। अर्थात् प्रत्येक सौर मण्डल में ग्रहों का आकर्षण सूर्य से ही होता है। वेद ने यह भी संकेत दिया है कि चन्द्रादि लोकों में अपना प्रकाश नहीं होता, किन्तु सूर्यादि लोकों से ही चन्द्र और पृथ्वी आदि लोक प्रकाशित हो रहे हैं। यह प्रसंग देखिए- **सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः। ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रितः (अथर्ववेद 14.1.1)। एषामभिप्रायः-अत्रा चन्द्र-पृथिव्यादिलोकानां सूर्यः प्रकाशकोऽस्तीति। ... द्यौः सर्वः प्रकाशकः सूर्येणोत्तभितो धारितः... एवं दिवि द्योतनात्मके सूर्य प्रकाशे सोमश्चन्द्रमा अधिश्रित आश्रितः सन् प्रकाशितो भवति। अर्थाच्चन्द्रलोकादिषु स्वकीयः प्रकाशो नास्ति, सर्वे चन्द्रादयो लोकाः सूर्यप्रकाशेनैव प्रकाशिता भवन्तीति वेद्यम्।**

वेद के इस प्रकार के मन्त्रों को ज्योतिष शास्त्र का मूल माना जा सकता है और ऐसे वेद मन्त्रों के अर्थों के विशदीकरण में ज्योतिष शास्त्र साक्षात् उपकारक है। प्राचीन गणित को भी ज्योतिष के नाम से ही जाना जाता था। इसलिए गणितशास्त्र भी ज्योतिष ही है। वेद में गणित विद्या के अनेक सन्दर्भ हैं। इसके लिए दयानन्द प्रणीत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का गणित विद्या विषय प्रकरण द्रष्टव्य है। एका च मे तिस्त्रश्च में... (यजुर्वेद-18.24) व चतस्त्रश्च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे षोडश मे... (यजुर्वेद 18.25) आदि मन्त्रों में अंकगणित और रेखागणित का मूल है तथा अग्न आ याहि... (सामवेद 1.1) में बीजगणित भी साध्य है। यह गणित विद्या भी ज्योतिष है-**सेयं गणितविद्या वेदांगे ज्योतिषशास्त्रे प्रसिद्धा... परन्त्वीदृशा मन्त्रा ज्योतिष शास्त्रस्य गणितविद्याया मूलमिति विज्ञायते।** इसलिए गणित विद्यारूप ज्योतिष शास्त्र का पण्डित इन गणितपरक मन्त्रों के व्याख्यान में अधिक प्रामाणिक हो सकता है। तभी तो ज्योतिष शास्त्र को मयूरशिखा की तरह मूर्धन्य माना गया है-**यथा शिक्षा मयूराणां नागानां मणयो यथा तद्वद्वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्।।**

वैदिक यज्ञों के सम्पादनार्थ कालगणना, तिथि, ऋतु, वर्ष, नक्षत्र आदि का वैज्ञानिक प्रतिपादन ज्योतिष का ही विषय है। इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र वेदार्थावबोध में अनेक दृष्टियों से अङ्ग अर्थात् उपकारक है। इस दृष्टि से ज्योतिष का अध्ययन-अध्यापन आज भी प्रासंगिक है।

जिज्ञासा-

ज्योतिष शब्द सुनते ही प्रायः वेदांग की अपेक्षा हमें पाखण्ड ज्योतिष का बोध होता है। इसलिए यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि ज्योतिष का मूल स्वरूप क्या है। यदि खगोलीय अध्ययन और गणित शास्त्र (रेखा, बीज आदि) ही ज्योतिष है, तो फिर हस्तरेखा, जन्मपत्री, विवाह, मूहुर्त, कालसर्प आदि योग क्या हैं? काल शास्त्र भी ज्योतिष में ही आता है। असीमित और निरवयव काल को समझने के लिए उसे सीमित और सावयव परिकल्पित करना पड़ता है। ब्रह्माण्ड की व्याख्या काल के अध्ययन के बिना अधूरी है। इसलिए काल गणना के सिद्धान्तों का अनुशीलन भी ज्योतिष शास्त्र के अन्तर्गत आता है। इन सिद्धान्तों की सूक्ष्मता का अध्ययन वैयाकरणों ने भी किया है और ज्योतिष शास्त्र ने भी। यह गणना वैज्ञानिक है, इसलिए इसका फल भी प्रमाण कोटि में आता है। ज्योतिष प्रोक्त सूर्यास्त, सूर्य ग्रहण व चन्द्र ग्रहण का मुहूर्त और आकाश में प्रतीयमान विविध नक्षत्रों की गति का ज्योतिषीय अध्ययन विज्ञान की कोटि में आता है। किन्तु गणित रहित फल को विज्ञान कैसे माना जा सकता है? अतः ज्योतिष का यह फलित पक्ष चिन्त्य है। इसमें अनवस्था भी है और अतिव्याप्ति भी। इसी कारण लोग इसे आज धनार्जन का सरल मार्ग व पाखण्ड का एक लुभावना रूप मानने लगे हैं। जबकि ज्योतिष वेदांग पाखण्ड नहीं है, बल्कि तथाकथित ज्योतिषी ही पाखण्डी हैं।

इस फलित चकाचौंध के कारण ही आज कुछ विश्वविद्यालयों में सिद्धान्तज्योतिष की अपेक्षा फलित ज्योतिष के पठन-पाठन का ही प्रचलन अधिक हो गया है। बिना सिद्धान्त या गणित के फल कितना विश्वसनीय हो सकता है, यह आप स्वयं विचार करें। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि प्रश्न अथवा जिज्ञासा भारतीय शास्त्र या चिन्तन का मूल है। जिज्ञासा तत्व सभी शास्त्रों में दिखाई देता है। यह तत्व सिद्धान्तज्योतिष में भी उपेक्षित नहीं है। किन्तु यही प्रश्न या जिज्ञासा आज फलिताचार्यों की सबसे बड़ी समस्या है और बिना प्रश्न या जिज्ञासा के कैसा शास्त्र? और यदि फलित में प्रश्न या जिज्ञासा का अवकाश है, तो आइए कुछ प्रश्न, जिज्ञासा या पूर्वपक्ष की स्थापना करें। मेरे पास इन प्रश्नों का समाधान नहीं है। अतः समाधान के बिना कुछ भी स्वीकार करना शास्त्र के प्रति दुराग्रह होगा। भारतीय चिन्तन में प्रश्न करना अपराध नहीं, गुण है। यास्क हों या भाष्यकार पतंञ्जलि अथवा ऋषि दयानन्द, उनकी यही सरणी है। तर्क से शास्त्र विज्ञान की कोटि में आता है। तर्कशील लोगों के मस्तिष्क में कुछ व्यावहारिक प्रश्न प्रायः उठा करते हैं-

1. ज्योतिष एक वेदांग अर्थात् वेदार्थबोध में उपकारक है। यदि ज्योतिष के नाम पर किसी व्यक्ति की नौकरी, प्रमोशन, तलाक, सौतन से छुटकारा, पति का वशीकरण, मनचाही शादी, काला जादू आदि के समाधान बताए जाते हैं, तो इसमें वेदांगता क्या है? ऐसे ज्योतिर्विदों को ऋषि दयानन्द ने ज्योतिर्विदाभास कहा है।

2. जन्मपत्र या कुण्डली भविष्य फल का आधार कैसे हो सकती है? एक ही अस्पताल में एक ही समय में होने वाले बच्चों के एक जैसे सुख, दुःख, क्लेश, आनन्द की क्या कोई भी ज्योतिर्विदाभास गारण्टी ले सकता है? यदि एक ही प्रकार की जन्मकुण्डली वाले बच्चों का जीवन एक जैसा नहीं, तो फिर इस जन्मपत्र या कुण्डली की प्रमाणिकता कैसे स्वीकार की जाए?

3. हस्तरेखा विशेषज्ञ प्रायः कहा करते हैं कि प्रत्येक मनुष्य की हस्त रेखा अलग-अलग ही होती है। यदि सब हस्त रेखाएं अलग-अलग ही हैं तो कैसे गणित सम्भव है और कैसे फल? क्योंकि फल तो तभी सम्भव है, जब समान रेखा वाले एक हजार या लाख लोगों के अध्ययन से यह सिद्ध हुआ हो कि इनका फल भी समान था। तभी व्याप्ति से अनुमान किया जा सकता है। निर्दुष्ट व्याप्ति के बिना अनुमान सम्भव ही नहीं है।

4. क्या यह सम्भव है कि गर्मी में घर में चलने वाला पंखा आपसे नाराज हो जाए और आपके भाई या बहन से खुश या आपकी साइकिल, स्कूटर, कार, पैन या चप्पल आपसे नाराज रहने लगे? कल्पना करो यदि नाराज भी हैं तो क्या इन्हें पूजा-पाठ से खुश किया जा सकता है? कभी नहीं। क्योंकि ये पदार्थ निर्जीव हैं, जड़ हैं, इनमें चेतना नहीं है। नाराज या खुश वही हो सकता है, जिसमें चेतना हो। इसलिए आपका पुत्र आप पर नाराज हो सकता है और अपने दादा-दादी, माँ पर खुश भी हो सकता है। यह शाश्वत नियम है। यदि अचेतन या जड़ होने से पैन, कार, चप्पल, पंखा, फ्रिज, दरवाजा आपसे नाराज नहीं हो सकते तो यह धरती भी किसी से खुश, किसी से नाराज नहीं हो सकती, क्योंकि यह भी अचेतन, जड़ है। फिर चांद, सूरज, शनि, मंगल, बृहस्पति कैसे नाराज या खुश हो सकते हैं, ये भी तो जड़ हैं। फिर उपाय करके इन निर्जीव, अचेतन, जड़ ग्रहों को प्रसन्न करने की लीला क्यों?

5. राम हमारी संस्कृति के प्रतीक पुरुष हैं। भयंकर परिस्थिति में भी क्या कभी राम ने इस फलित ज्योतिष का आश्रय लिया? शत्रु पर विजय पाने के लिए क्या राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, जटायु ने आक्रमण करने का शुभ मुहूर्त पूछा था। राम ने लंका को पुरूषार्थ से जीता या ज्योतिषियों के मुहूर्त से?

6. श्रीमद्भागवतगीता में क्या कोई एक भी सन्दर्भ ऐसा है, जहाँ योगेश्वर कृष्ण ने शुभ मुहूर्त में युद्ध करने की बात की हो ताकि विजय निश्चित हो सके। वे तो अर्जुन को कहते हैं कि तुम्हारा काम अपना दायित्व निभाना है। इस युद्ध में विजयी हुए तो राज मिलेगा और मर गए तो स्वर्ग (यश) मिलेगा-हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्ग जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। गीता तो दिव्य कर्म का शास्त्र है और फल के प्रति आसक्ति को पातक माना है। अब आप विचारें कि योगेश्वर कृष्ण की बात माननी चाहिए या ज्योति-र्विदाभासों की।

7. आस्तिक दर्शन छः हैं-सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त, पर किसी भी सूत्रकार ने फलित का उल्लेख तक नहीं किया, क्यों?

8. नेपाल नरेश वीरेन्द्र वीर विक्रम शाह के राज परिवार में पीढ़ियों से पुरोहितों व ज्योतिषियों की परम्परा रही है, पर जून 2001 में उनके पुत्र ने ही सारे खानदान को खत्म कर दिया था। किसी ज्योतिषी ने तब न भविष्यवाणी की थी और न ही उपाय बताया था। दुनिया भर में कितने ही विशिष्ट व्यक्तियों की आकस्मिक मृत्यु हुई, भारत में ही इन्दिरा गांधी,

(शेष पृष्ठ 6 पर)

पृष्ठ 5 का शेष-ज्योतिष की वेदांगता

राजीव गांधी, बेअन्त सिंह आदि की भविष्यवाणी हो जाती तो शायद कुछ उपाय ही हो जाता।

9. चण्डीगढ़ हाउसिंग बोर्ड में मकान के लिए एक बार मैं आवेदन करने लगा तो एक मित्र ने सलाह दी कि अपना मकान कभी नहीं निकला, इसलिए इस बार अमुक ज्योतिषी से मुहूर्त निकलवा कर आवेदन करो। फिर शर्तिया मकान निकलेगा क्योंकि इसी शॉर्टकट से उसका, उसके पिता, बेटी का मकान भी लाटरी में निकल चुका है। मैंने भी तुरन्त उस ज्योतिषी का पता पूछा तो मालूम हुआ कि वह चण्डीगढ़ में ही सैक्टर 20 में किराए पर रहता है। अब मेरी रुचि और बढ़ गई, मैंने कहा कि इतने सिद्ध लोग यहाँ पर रहते हैं और मुझे मालूम ही नहीं तो मित्र ने कहा-बस अब चिन्ता मत करो, वह बहुत सधा हुआ ज्योतिषी है, समझो चण्डीगढ़ में आपका मकान पक्का। अब मेरा प्रश्न था कि इतना सिद्ध ज्योतिषी स्वयं के लिए आवेदन क्यों नहीं करता? दूसरों के तो मकान निकलवा देता है और खुद किराए पर बैठा है। वह मुहूर्त देखकर आपका मकान निकलवा सकता है तो अब तक उसने अपना, अपने पुत्र का, अपने रिश्तेदारों का मकान क्यों नहीं निकलवाया? अब वह मित्र चुप, बोला कि बात तो सही है, यह तो हमने सोचा ही नहीं। क्या यह तुकबाजी ज्योतिष है?

10. कई ऐसे तथाकथित ज्योतिषियों से मेरी अच्छी जान पहचान है जो संकट आने पर महंगे उपाय अपने भक्तों को बताते हैं, पर वही संकट उन पर आ जाए तो वे अपने घर में इस प्रकार का उपाय नहीं करते, क्यों? यदि ज्योतिषी अपने घर में कभी कोई उपाय न करें तो पुरोहित कभी अपने खर्च से घर में यज्ञ न करे, तो शंका होना स्वाभाविक है।

11. मेरा एक पी.एच.डी. (प्राप्त) विद्यार्थी है शिमला में। अच्छा ज्योतिषी है। उसने अनेक लोगों का भविष्य भी बताया, उपाय भी और विवाह के शुभ मुहूर्त भी। सब गुण मिलान करके, शुभ मुहूर्त देखकर उसका भी विवाह निश्चित हुआ, पर विवाह के दिन सुबह-सुबह उसके एक साथी का फोन आया कि गुरु जी विवाह के लिए मत चलना। कल उसका एक्सीडेंट हो गया है। वह बड़ा श्रद्धालु विद्यार्थी है, अतः मुझे बहुत कष्ट हुआ। उसकी शादी टूट गई और वह बिस्तर पर आ गया। पिछले 13-14 वर्षों से वह बेचारा अपाहिज जीवन जी रहा है। उसे असहाय कष्ट है। ज्योतिष कार्य भी ठप्प हो गया। बूढ़ी माँ उसकी देखभाल कर रही है। मेरे अपने बालक के साथ यह सब घटित हो गया, मैं भला कैसे इस पक्ष को ज्योतिष शास्त्र मानूँ?

12. मेरा एक और पी.एच.डी. छात्र ज्योतिष के कारण कई नेताओं और बॉलिवुड में भी पैठ बनाए हुए था। बहुत पहले पंजाब विश्व विद्यालय की दयानन्द पीठ में प्रोफेसर की पोस्ट निकली। एक दिन प्रसंगवश मैंने उस छात्र से प्रश्न किया कि क्या यहाँ मेरा सेलेक्शन होगा? तो उसने घड़ी में समय देखा और मेरी प्रश्न कुण्डली बनाकर बोला कि-गुरु जी, सेलेक्शन की काफी सम्भावना है, पर कुछ रुकावट भी है। उसने उपाय बताया कि-आप प्रत्येक गुरूवार को एक कटोरी उड़द की दाल, एक साबुन और... इतने समय तक किसी को भी दान करो, फिर आपका सेलेक्शन पक्का, क्योंकि आपका नाम 'व' से शुरू होता है और यह दान किसी को भी कर सकते हैं-मित्र हो, भाई हो, रिश्तेदार हो या भिखारी हो। मैंने राहत के साथ चिन्ता व्यक्त की कि यदि मैं यह दान का उपाय न कर पाऊँ और यही उपाय हमारे मित्र डॉ. विक्रम कुमार ने कर लिया तो? उस छात्र ने कहा कि फिर उनका सेलेक्शन होगा, क्योंकि उनका नाम भी 'व' से ही शुरू होता है। अब मैंने दूसरा प्रश्न किया कि मैं डॉ. विक्रम जी से सलाह कर लेता हूँ। वे हर गुरूवार को अपना दान मुझे दे दें और मैं अपना दान उन्हें दे दूंगा। उनकी दाल, साबुन आदि हम प्रयोग कर लेंगे और हमारी दाल, साबुन वे। दोनों का दान हो जाएगा और किसी का नुकसान भी नहीं होगा। हम दोनों ने दान दिया है, अब बताओ सेलेक्शन किसका होगा? अब वह छात्र असमंजस में पड़ गया और बोला गुरु जी, सही बात है, यह तो झमेला ही है। हमने तो जो पढ़ा है वो बता देते हैं। भगवान जाने ऐसा होता भी है या नहीं। मैंने उसे समझाया कि किताब में लिखी हर बात प्रमाण नहीं होती। कोई भी भाषा हो, उसमें गपबाजी भी हो सकती है। खैर, कुछ देर के बाद बात बदलते हुए उसने पूछा कि गुरु जी, अमुक संस्था में पोस्ट निकली है, क्या आवेदन कर दूँ और क्या मेरा सेलेक्शन हो जाएगा? मैंने कहा कि भई, ज्योतिषी तो तुम हो और भविष्य मुझसे पूछ रहे हो। चलो मैं अपना ज्योतिष लगा देता हूँ-तुम व्याकरण, साहित्य, दर्शन का अमुक-अमुक इतना भाग जरूर तैयार करो और इंटरव्यू संस्कृत में ही देना। महीने भर के बाद आकर वह बोला-गुरु जी, आपने जैसा कहा, मैंने वैसा ही किया और मेरी नियुक्ति हो गई। अब बताइये, यदि यही ज्योतिष है तो अच्छा ज्योतिषी कौन हुआ?

13. यदि मुहूर्तों के कारण उथल-पुथल होती, सफलता और असफलता मिलती, तो आज पूरी दुनिया में फलितज्योतिषियों की ही सरकार होती। इलेक्शन में ये फलितज्योतिषी अपनी औलाद, अपने रिश्तेदारों का सर्वश्रेष्ठ शुभ मुहूर्त में पर्चा भरते, एम.एल.ए. और एम.पी. बनते। बी.ए., एस.सी, एम.बी.बी.एस., लॉ. इंजिनियरिंग आदि सभी परीक्षाओं के लिए शुभ मुहूर्त में परीक्षा फार्म भर के टॉप करते, सारे स्वर्ण पदक इन्हीं के होते। मेरी जिज्ञासा यह है कि शुभ मुहूर्त के कारण विश्वविद्यालय की परीक्षा ही पास नहीं कर सकते तो इलेक्शन कैसे जीता जा सकता है?

14. पुनरपि यदि इस प्रकार का फलित ज्योतिष विज्ञान है तो मेरी केवल यही प्रार्थना है कि ये फलितज्योतिषी इस विद्या का प्रयोग भारत की सुरक्षा के लिए करें। सरकार को बताते रहें कि कौन सा देश कब आक्रमण करेगा, किस प्रान्त में कब बमब्लास्ट का योग है, इनका उपाय भी कर दें तो भारी नुकसान से बचाव हो सकता है। हाँ, मुझे इस बात का खेद अवश्य है कि हमारे फलितज्योतिषियों ने यह क्यों नहीं बताया कि भारत 15 अगस्त 1947 को आजाद होगा, न ही यह बताया कि भारत के विभाजन का योग है और उपाय भी नहीं बताया। यह भी नहीं बताया कि 1971 में पाकिस्तान टूटेगा और बंग्लादेश बनेगा। चलो जो बीत गई सो बीत गई, अब बता दें कि बलूचिस्तान कब अलग होगा और भारत को मजबूत करने में सहयोग करें।

उपसंहार-

ज्योतिष विषयक अनेक प्रश्न और जिज्ञासाएं लोगों के मनोमस्तिष्क में हैं। इस पत्र का उद्देश्य आक्षेप करना नहीं है। कुछ प्रश्न मूर्खतापूर्ण भी प्रतीत हो सकते हैं, किन्तु इन प्रश्नों का समाधान प्रत्येक जिज्ञासु चाहता है। वस्तुतः यह ज्योतिष नहीं है, ज्योतिष तो भारतीय विद्या की एक प्रशस्य विधा है। मूलतः ये प्रश्न ज्योतिष पर न होकर धनोपासक ज्योतिर्विदाभासों के लिए है। आज कितने ही ऐसे ज्योतिर्विद् भी पैदा हो गए हैं, जो संस्कृत बिल्कुल भी नहीं जानते, पर विख्यात ज्योतिषी हैं। ज्योतिष एक विद्या है, शास्त्र है, वेदांग है, पर कुछ लोगों ने इसे उपहासशास्त्र बना दिया है। ज्योतिष और कर्म में विरोध की कल्पना नहीं करनी चाहिए। फलित-उपायों, कर्म व कर्मफल में विरोध है। संस्कृत में लिखी या शास्त्र के नाम से प्रसिद्ध प्रत्येक पंक्ति या बात प्रमाण नहीं हो सकती। युक्तियुक्त बात किसी साधारण व्यक्ति ने भी कही हो तो वह स्वीकरणीय है और युक्तिहीन भले ही किसी ऋषि के नाम से भी फैली हो तो उसे तुरन्त छोड़ देना चाहिए-**अपि पौरुषमादेयं शास्त्रं चेद्युक्तिबोधकम्। अन्यत्वार्षमपि त्याज्यं भाव्यं न्याय्यैक सेविन।।** शायद योगवासिष्ठाकार के समय में भी लोग ऋषियों का नाम लेकर अनाप शनाप प्रचार कर रहे थे। इसीलिए योगकार ने कदाचित अपना क्षोभ प्रकट किया है कि-अयुक्त बात भले ही ब्रह्मा भी कहें, मत मानों और युक्तियुक्त बात कोई बालक भी कहे तो वह मान्य है-युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि। अन्यतृणमिव त्याज्य-मप्युक्तं पद्मजन्मना।। शास्त्र में मेरा तेरा नहीं होता, सत्य और असत्य होता है, सत्य अर्थ का ग्रहण और असत्य का परित्याग करने में कैसी हिचकिचाहट? ऋषि दयानन्द कहते हैं-सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। यह कैसी समझदारी है कि इस कुएँ को मेरे पिता जी ने बनवाया था, इसलिए मैं तो इसी का पानी पिऊँगा, भले ही वह पानी सड़ गया हो, पर सामने बहती गंगा के पानी का स्पर्श भी नहीं करूंगा। इन लोगों का क्या इलाज है-योऽस्मत्तातस्य कूपोऽयमिति कौपं पिबत्यपः। त्यक्तवा गाङ्गं पुरस्थं तं कोऽनुशास्त्यतिरागिणाम्।।23 इसलिए शास्त्र और शास्त्राभास व ज्योतिष और ज्योतिषाभास के अन्तर को जानना चाहिए। ज्योतिष शास्त्र के सम्यग् अध्ययन के लिए संस्कृत वाक् में अच्छी गति होना आवश्यक है। सूर्य सिद्धान्त जैसे ग्रन्थ रत्न को समझने के लिए संस्कृत के साथ वैज्ञानिक दृष्टि अनिवार्य है। संस्कृत ज्योतिर्विदों को इस ज्योतिषाभासरूप पाखण्ड के निराकरण के लिए भी प्रयास करना चाहिए, ताकि भारत की इस ज्योतिष विद्या की प्रतिष्ठा शास्त्र के रूप में विद्वत्समाज में समादृत हो सके। इस महान् शास्त्र के अनुसंधान की नितान्त आवश्यकता है।

पृष्ठ 2 का शेष-... अर्थात् शारीरिक, आत्मिक...

आध्यात्मिक अन्धविश्वास, सांप्रदायिक कट्टरवाद दूर करना। लिंग, वर्ण, रंग, जाति, देश के आधार पर भेदभाव रहित आत्मिक स्तर पर सबके सुख-दुःख, मान-अपमान को समान समझ, मानव मात्र से प्रेम करने वाला समाज बनाना। एक सृष्टि एक सृष्टिकर्ता, एक ईश्वर, एक ईश्वरीय ज्ञान, एक धर्म के सिद्धांत का प्रचार करके विश्व मानव समाज में एकता लाना। एक सृष्टिकर्ता में सब मनुष्यों का पितृत्वभाव और सब जीवधारियों में परस्पर भ्रातृभाव के आधार पर सहिष्णु, स्नेही तथा सहयोगी समाज बनाना। वर्तमान विविधतापूर्ण विश्व के सम्पूर्ण मानवजाति के पूर्वज समान थे। सबकी भाषा एक थी। धर्म, सभ्यता और संस्कृति एक थी। इस ऐतिहासिक तथ्य का प्रकाश फैलाकर मानव एकता को दृढ़ करना।

इस विश्व ऐक्य के लिए विभिन्न मत संप्रदाय के अनुयायी तथा उनके विद्वानों से मेल करना होगा। उनके साथ वाद, संवाद, शास्त्रार्थ आयोजित करना होगा। मत और धर्म में अंतर बताने वाले सत्संग व सम्मेलन बार-बार करने होंगे। विश्व ऐक्य का ज्ञान देने वाले साहित्य आर्यसमाज के पास हैं। आवश्यकता है इनका विश्व की भाषाओं में अनुदित व प्रकाशित कर संसार के सभी देशों के पाठकों तक पहुंचाया जाए। पर बाह्य विश्व को संगठित करने का यह कार्य तभी होगा जब आर्यसमाज का आंतरिक संगठन दृढ़ होगा। संगठन के नेताओं की ऐसी योजना होगी, कार्यक्रम होगा। पर आर्य समाज के पास ऐसी कोई योजना नहीं है। स्थानीय संगठन कहीं-कहीं सक्रिय है पर अधिकांश अधिकारी परंपरा पूर्ति के लिए, सक्रिय व कर्मठ दीखने के लिए कार्यक्रम करवाते हैं। सदस्य बढ़ाने, संगठन सुदृढ़ करने तथा आसपास के क्षेत्र में नए संगठन बनाने के लिए कोई सोच तक नहीं देखी जा रही है। कुछ पद व धन के स्वार्थी अधिकारी समाज का विस्तार ही नहीं करना चाहते। तो कुछ समाजों के लोग जातिवाद, प्रांतवाद व क्षेत्रवाद जैसी संकीर्ण भावना के कारण विवाद और विघटन कर रहे हैं। अतः पहले हमें आंतरिक संगठन ठीक करना होगा।

संगठन के मुख्य कारक हैं- अधिकारी और पुरोहित। संगठन के लिए समाज के प्रधान और मन्त्री को सभी सदस्यों के घर-परिवार से परिचित होना चाहिए। आत्मीय पारिवारिक संबंध स्थापित करना चाहिए। उनके साथ सतत संपर्क में रहना चाहिए। कोई सदस्य समाज के सत्संग, उत्सव में क्यों नहीं आ रहा है, यह पूछना, जानना, ध्यान रखना होगा। अधिकारी सदस्य के सुख-दुःख, स्वास्थ्य का ध्यान रखने तथा साथ देने वाले हों। समाज के सदस्य और सदस्यों के परिवारों को प्रशिक्षित और संगठित करने के लिए शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के कार्यक्रम, व्यायाम, आत्मरक्षा कौशल, स्वास्थ्यरक्षा, योगाभ्यास, ध्यान, सत्संग, संवाद, स्पर्द्धा तथा विशेषतः त्यौहारों का सपरिवार सामूहिक आयोजन करें। सदस्यों को सूचित व निमन्त्रित करें। उपस्थित न होने पर कारण जानें, अभिप्रेरित करे।

अधिकारी के पश्चात् पुरोहित की महत्वपूर्ण भूमिका है। अतः समाज में विद्वान्, व्यवहार कुशल, स्थायी आचार्य व पुरोहित की व्यवस्था हो। जो परिवार को समाज से जोड़ने का कार्य करे। समाज में नये सदस्य जोड़े तथा नये स्थान पर संगठन बनाने की भूमिका तैयार करे। पुरोहित समाज के प्रत्येक सदस्य से सुपरिचित हो। प्रत्येक घर जाना आना हो। सबका नैतिक, आध्यात्मिक मार्गदर्शक हो। सबको सन्ध्योपासना अवश्य सिखाए। घर में यज्ञ, संस्कार, सत्संग कराने तथा समाज के सभी कार्यक्रमों में भाग लेने की प्रेरणा व सूचना करे। हम पुरोहित को अपने परिवार के सदस्य की तरह मानें। सुख-दुःख में साथ रहें, सम्मान दें।

सामाजिक उन्नति तथा आर्यसमाज के उद्देश्य पूर्ति के अन्य भी उपाय हैं, पर विस्तारभय से लेख को यहीं विराम देते हैं।

पृष्ठ 4 का शेष-वैदिक परम्पराएँ एवं मान्यताएँ

4) मित्र के प्रति अपराध पाप माना गया है। जो व्यक्ति अपने विद्वान् मित्र को छोड़ देता है, वाणी उसको छोड़ देती है-यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति (ऋक् 10/71/6)

तब हिंसा और द्वेष को अच्छा नहीं माना जाता था। एक सन्दर्भ में कहा है-माहिर्भूर्मा पृदाकुः। अपदे पादा प्रतिधातवे अकः (यजु. 8/23) अर्थात् सर्प अजगर के सदृश हिंसक मत बनो। जहां पांव रखना कठिन है, उस स्थान को दौड़ने के योग्य बना दो। द्वेष के लिए एक मन्त्र में अग्निदेव से इस प्रकार कहा है-

यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः।

निन्दाद्यो अस्मान्धिप्साच्य सर्वतं भस्मसात् कुरु

(यजु. 11/80)

अर्थात् जो हमसे शत्रुता करे, द्वेष करे, निन्दा करे, भय दिखाए उसको भस्म कर दो। जो हमारा शत्रु बनाता है उसे नीचे धकेल दो और सूखे काठ के समान दहन कर दो। ''यो नो अरातिं समिधानचक्रे पाप्मानं योऽस्मान्द्वेष्टि (यजु. 26/10)। इसी प्रकार अथर्ववेद में भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष द्वेष करने वाले के नाश का कथन है (अथर्व 1/19/4)। हम सदैव अभय हों, इसके लिए भी अनेक प्रार्थनाएं की गई हैं। यहां तक कि मित्र, अमित्र, भाई, बांधवों एवं प्राणों के संचार में भी अभय हों (अथर्व. 19/15/1-6, 2/15/1-6) यजु. (36/22)। क्योंकि भय मनुष्य की प्रगति में बाधक है साथ ही अनेक मानसिक कुण्ठाओं, मुसीबतों, सामाजिक अनाचारों एवं व्यभिचारों को जन्म देता है।

वैदिक काल में गृहस्थी अतिथि सत्कार करना अपना कर्त्तव्य समझते थे एवं उनके लिए नैतिक आदर्श था कि 'अतिथि' के भोजन के पश्चात् गृहस्थी भोजन खाते थे। (अथर्व. 1/8/8) समाज में अनुशासन एवं सुख शान्ति हेतु वर्ण-धर्म के सम्यक् पालन करने की प्रथा को मान्यता दी जाती थी। इस देश के ब्राह्मण विद्वान बनें, क्षत्रिय वीर बनें, वैश्य देश का धन बढ़ावे, शूद्र सेवा करें और समाज में प्रत्येक अंग एक दूसरे को रुचिकर हो' (ऋक् 8/35/16/18) विश्व के आदिम ग्रन्थ ऋग्वेद में मानव को राष्ट्रीय एकता की भावना के लिए प्रेरित करते हुए कहा है-

'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।'

(ऋक् 10/191/2)

धन का जीवन में अत्यधिक महत्व होते हुए भी उसके अर्जन एवं उपभोग के विषय में नैतिक आचरण को ही मान्यता दी गई है यथा ''अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमान' (ऋक् 10/3/13)

अर्थात् अक्षों से मत खेल, कृषि कर्म द्वारा उपार्जित धन में सन्तोष करता हुआ उस उपार्जित धन में रमण कर। वे लोग श्रद्धापूर्वक कार्य करने में ही विश्वास रखते थे, यथा-

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।

श्रद्धा भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि।।

(ऋक् 10/151/1)

वेदों को धर्म का स्रोत माना गया है। उस युग में प्राणी ईश्वर में बहुत आस्था रखते थे और कहते थे कि वह ईश्वर हमारा पिता है, उत्पादक और मित्र है (अथर्व 11/1/3) तथा यजुर्वेद में कहा है कि ईश्वर सर्वव्यापी अपनी प्रजा में ओतप्रोत है (यजु. 32/8)

अतः धर्मानुसार, जीवन यापन करना ईश्वर में निष्ठा, सत्य बोलना व उपभोग में उचित ढंग को अपनाना, सबसे मिलजुल कर रहना, समभाव रखना ही नैतिकता से परिपूर्ण वैदिक परम्पराएं एवं मान्यताएं थीं। जिनका अनुसरण करना आज के मानव के लिए भी परमोपयोगी है। इन नैतिक मान्यताओं से अभिभूत चरित्र से एक आदर्श परिवार, समाज और राष्ट्र का निर्माण होता है। इन मूल्यों की अवमानना अशान्ति और बर्बरता को जन्म देती है। जब-जब, जहां-जहां इन मान्यताओं की अवहेलना हुई है वहां समाज में आतङ्क का प्रादुर्भाव हुआ है। तब प्रत्यावर्तन करना पड़ा और उन मूल्यों का पुनः निर्धारण अनिवार्य हो गया।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली एवं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के आह्वान पर 3 मई 2021 को अन्तर्राष्ट्रीय यज्ञ दिवस के अवसर पर हर घर यज्ञ, घर घर यज्ञ योजना के अन्तर्गत वैश्विक महामारी कोरोना से मुक्ति की कामना करते हुए रोग निवारण यज्ञ का आयोजन किया गया। इस अवसर पर चौधरी ऋषिपाल सिंह एडवोकेट उप प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब अपनी छोटी बहिन वरिष्ठ अध्यापिका श्रीमती सुरेश कुमारी सैनी के साथ अपने जन्म दिवस पर 90 वर्ष में प्रवेश करने पर अपने निवास स्थान 2 अंकुश नई कचहरी चौक जालन्धर में हवन करते हुये। उनके साथ हैं एडवोकेट श्री चांद कुमार एवं हिन्दी सेवा समिति राष्ट्रीय के प्रधान श्री सुनील शर्मा जी। चित्र दो में श्री राजीव खन्ना जी नया नंगल अपने परिवार सहित यज्ञ करते हुये। श्री प्रविन्द्र चौधरी जी प्रधान आर्य समाज औहरी चौक बटाला एवं श्रीमती सुनीता जी बलाचौर अपने परिवार सहित यज्ञ करती हुई। चित्र तीन में श्री ललित बजाज कोटकपूरा, श्री मनोहर लाल जी आर्य लुधियाना एवं श्री राजिन्द्र बत्रा जी लुधियाना अपने अपने परिवार के साथ यज्ञ करते हुये। चित्र चार में श्री स्वतंत्र कुमार जी मंत्री आर्य समाज जंडियाला गुरु जिला अमृतसर अपने परिवार के साथ यज्ञ करते हुये। साथ में आर्य समाज जवाहर नगर लुधियाना के प्रधान श्री बृजेश पुरी जी एवं आर्य समाज सन्नौर जिला पटियाला के प्रधान श्री सतीश बदरू जी, श्रीमती शिवानी बदरू जी एवं श्री राजिन्द्र वर्मा जी यज्ञ करते हुए।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।
सम्पादक–प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**